International Research Journal of Human Resources and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2349-4218)
Impact- Factor 5.414 Volume 5, Issue 3, March 2018
Website- www.aarf.asia, **Email** : editoraarf@gmail.com

जयशंकर प्रसाद का 'कामायनी कृत' जीवन दर्शन

डॉ0 सूर्य प्रकाश नापित
व्याख्याता– हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय झालावाड़

हिन्दी साहित्य वांगमय के आधुनिक युगीन काव्य में छायावाद अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकताके विरोध स्वरूप छायावाद का जन्म हुआ। जिसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ''छायावाद मूलतः रहस्यवाद ही है एक विशेष प्रकार की काव्य शैली हैं'' कहा है।[1] प्रख्यात आलोचक शान्तिप्रिय द्विवेदी के अनुसार ''छायावाद केवल एक काव्य कला नहीं है। जहाँ तक साहित्यिक टेकनीक से उसका सम्बन्ध है वहाँ तक कला है और जहाँ दार्शनिक अनुभूतियों से उसका सम्बन्ध है वहाँ वह एक प्राण है, एक सत्य है। अतएव छायावाद काव्य की केवल – अभिव्यक्ति ही नहीं बल्कि इसके ऊपर एक श्रेष्ठ अभिव्यक्ति भी है। छाया शब्द यदि उसकी कला के स्वरूप (अभिव्यक्ति को सूचित करता है तो वाद उसके अंतः प्रकाश (अभिव्यक्य) को।''[2]

छायावाद के रूप में ''यह नवीन कविता पश्चिम से उधार नहीं ली गई और न तो रविन्द्र के अनुकरण पर रोपी गई है बल्कि भारतीय समाज में पूँजीवादी सभ्यता के क्रमशः घुलते हुए प्रभाव के कारण नव चेतना जागी । उसी के फलस्वरूप यह – काव्य निर्मित हुआ।''[3] डॉ नगेन्द्र छायावाद को एक प्रकार की भाव पद्धति के रूप में व्याख्यायित करते हुए कहते हैं कि ''छायावाद एक प्रकार की भाव पद्धति है। जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है। .... इस दृष्टिकोण का आधेय नव जीवन के स्वप्नों और कुंठाओं के सम्मिश्रण से बना है। प्रकृति अन्तर्मुखी तथा वायवी है, और अभिव्यक्त हुई है प्रकृति के प्रतीकों के द्वारा। उसे सीधी प्रेरणा नहीं मिली।''[4]''इस प्रकार कविता के इस नये स्वरूप में छायावादी काव्य का जन्म हुआ और इसके प्रणेता कवियों में जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्माऔर सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' रहे।

सभी छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद का स्थान एक आध्यात्मवादी तत्व चितक के रूप में प्रतिस्थापित हुआ। आनन्द वाद प्रसाद जी की जीवन दृष्टि ही हैं जो उनकी प्रमुख काव्यकृति कामायनी के माध्यम से दृष्टिगोचर होती है। ''प्रसाद का दर्शन कश्मीरी शैव दर्शन एवं प्रत्यभिज्ञ दर्शन (इच्छा, ज्ञान, क्रिया) से ओत प्रोत है जिसे प्रसाद जी ने भारतीय शास्त्रों के माध्यम से ही नहीं अपितु अपने जीवन दर्शन से व्याख्यायित किया है। यह उनकी दार्शनिक विवेचना न होकर व्यावहारिक साधना है जिसका विकास सम्पूर्ण जीवन जगत के साथ साथ हुआ है। यह एक प्रकार का व्यवस्थित दर्शन है और मूलतः भारतीय दर्शन है जिसमें आध्यात्मिक पक्ष प्रबल होकर सामने आता है।''[5]

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

दर्शन का सामान्य अर्थ है 'देखना' किन्तु दर्शन तथा सामान्य देखने में बहुत अन्तर होता है। किसी वस्तु का सूक्ष्म निरीक्षण ही दर्शन कहलाता है। ब्रह्म क्या है, आत्मा क्या है, जगत क्या है एवं माया क्या है इन सभी प्र"नों का समाधान करने के लिए ही द"र्ान की उत्पति हुई है। प्रसाद जी आनन्दवादी कवि थे, आत्मा को उन्होंने आनन्द स्वरूप माना है। इसी आत्म स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए वेदान्त एवं शैव द"र्ान के सारभूत तत्वों की अभिव्यक्ति कामायनी में की गई है। प्रत्यभिज्ञ द"र्ान कामायनी का प्राण तत्व है, प्रसाद जी का सारा परिवार शैव द"र्ानों मे से क"मीर के प्रत्यभिज्ञ द"र्ान को ही अत्यन्त पुष्ट और प्रबल मानता था। स्वयं प्रसाद जी सुंधनी साहु की दुकान पर सुरती का कार्य करते रहते थे और शहर बनारस आने जाने वाले व्यक्तियों से वेद, संहिता आदि धार्मिक पुस्तकें मंगवाकर अध्ययन भी करते रहते। इससे स्पष्ट होता है कि प्रसाद जी का भी शैव दर्शन की ओर अधिक झुकाव था। कामायनी की आधी से अधिक रचना भी उन्होंने सूधनी साहू के कारखाने में सुरति–कला का कार्य करते हुए की थी।

वस्तुतः कामायनी पर शैव दर्शन का पूर्ण रूपेण प्रभाव रहा है और कामायनी प्रसाद जी के जीवन को पुर्नरचना है इसमें प्रत्यभिज्ञ दर्शन निम्नांकित रूपों में अभिव्यक्त हुआ है यथा :–

1. आत्मा –प्रत्यभिज्ञ दर्शन में आत्मा को महाचेतना के रूप में स्वीकार किया गया है। जो सदैव ही अपने अक्षुण्य प्रभाव द्वारा स्थिरता बनाए रखती है–''कर रही लीला मय आंनद, महाचिति सजग हुई सी व्यक्त। विश्व का उन्मीलन अभिराम, इसी में सब रहते अनुरक्त'' वही (महाचिति) इस विश्व के क्रिया–कलापों विविधताओं में म्ल प्राण रूप है। और सदैव ही स्वेच्छा से निर्माण और विनाश करती रहती है–''काम मंगल से मंडित श्रेय, सर्ग इच्छा का है परिणाम। तिरस्कृत कर उनको तुम भ्ल बताते हो असफल भव धाम''। और यही महाचेतना आत्मा रूप में इच्छा, ज्ञान और क्रिया है। इस त्रिकोण के मध्य बिन्दु तुम शक्ति विपुल क्षमता वाले थे। एक–एक को स्थिर ही देखो, इच्छा ज्ञान क्रिया वाले थे।इसी को कवि ने चेतनता के नाम से भी अभिव्यक्त किया है–''चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था''। यह ब्रह्म शंकर के वेदान्त सेसर्वथा भिन्न है। कामायनी में मनु शिवरूप हो जाते हैं और श्रद्धा शक्ति रूप। इसमें शिव शक्ति की परिकल्पना शैव दर्शन की ही भाँति आनन्द सागर और उसकी तरंगावली के रूप में की गई है–''चिरमिलित प्रकति से पुलकित वह चेतन रूप पुरातन। निज शक्ति तरंगायित था, आनन्द अम्बुनिधि शोभन''। इस भाँति प्रसाद जी ने आत्मा को महाचेतना, शिवशक्ति, इच्छा–ज्ञान–क्रिया की भांति माना है।

2. जीव – कामयनी में जीव या मनुष्य के प्रतीक रूप में मनु है। पत्यभिज्ञ दर्शन में जीव को त्रिमल और षड़कचुको से आवृत आत्मा कहा गया है। प्रसाद जी ने इन सभी गुणों से परिपूर्ण मनु की स्थापना की एवं मनु को आत्म विस्मृति के कारण इधर उधर भटकाते रहते हैं। उनकी यह स्थिति आणव है। निर्वेद सर्ग में इसका उल्लेख भली भाँति प्रकट हो जाता है। निर्वेद से रहस्य तक उसकी स्थिति शाक्त रहती है जिसमें भेदाभेद बुद्धि की प्रधानता रहती है। मनु के शिव रूप होकर अखण्ड आनन्दमय हो जाना ही शाभव

स्थिति है, जिसमें केवल अभेद बुद्धि प्रधान है। स्वप्न शाप जागरण भस्म हो इच्छा ज्ञान मिल लय थे। दिव्य अनाहत पर निनाद में श्रद्धायुत बस मनुतन्मय थे।

3. जगत– कामायनी में प्रत्यभिज्ञ दर्शन के प्रभाव स्वरूप सृष्टितत्व को महाचेतना की इच्छा का परिणाम कहा गया है –''काम मंगल से मंडित श्रय, सर्ग इच्छा का है परिणाम''। सृष्टि का उद्‌भव मूल शक्ति के द्वारा ही होता है प्रसाद जी ने इसे प्रेमकला की संज्ञा प्रदान की है–''यह लीला जिसकी विकसकली वह मूल शक्ति थी प्रेम कला'' और यह सारा जगत उस महाचिति के लीला मय आनन्द की ही अभिव्यक्ति है इसी कारण सब लोग इसी में अनुरक्त होते जाते हैं–''कर रही लीलामय आनन्द महाचिति, सजग हुई सी व्यक्त, विश्व का उन्मीलन अभिराम इसी में सब होते अनुरक्त''। प्रत्यभिज्ञ दर्शन में इस सृष्टि के निर्माण का मूल कारण है माया और माया उस परमात्मा या परम्‌शिव की एक शक्ति विशेष है। ''घूम रही है यहॉ चतुर्दिक चलचित्रों की संसृति छाया। जिस आलोक बिन्दु को मेरे वह बैठी मुसक्यातीमाया''। जगत विषयक प्रसाद जी की मान्यता शैव सिद्धान्त पर आधारित है और वेदान्त के अद्वैतवाद से सर्वथा भिन्न है। जगत का ईश्वर के साथ अभेद या आभास सम्बन्ध है। इस जगत के विकास में 36 तत्वों की परिकल्पना की गयी है। इनमें प्रथम पाँच शिव, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या, परमेश्वर की शक्ति के विकसित रूप हैं। माया, काल, नियति, विद्या, राग, कला, पुरूष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, मन, आँख, हाथ, कान, नाक, मुँह, जिह्‌वा, त्वचा, पैर, लिंग, गुदा, पाँच तन्मात्राएं, अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध और पाँच स्थूल भू तत्व आकाश, वायु, पृथ्वी, जल एवं अग्नि है, ये सभी 36 तत्व कामयानी म यथा स्थित प्रयुक्त हुए है।

4. आनन्दवाद–आनन्दवाद प्रसाद जी की जीवन दृष्टि है जो कामायनी के माध्यम से दृष्टिगत होती है। साथ ही कश्मीरी शैवमत एवं प्रत्यभिज्ञ दर्शन इच्छा, ज्ञान, क्रिया, से ओत–प्रोत है। जिसे प्रसाद जी ने भारतीय शास्त्रों के माध्यम से नहीं अपितु अपने जोवन दर्शन के आधार पर व्याख्यायित किया है। यह उनकी दार्शनिक विवेचना न होकर व्यवहारिक साधना है जिसका विकास सम्पूर्ण जीवन जगत के साथ हुआ है। यह एक प्रकार का व्यवस्थितदर्शन है जो मूलतः भारतीय दर्शन है और इसमें आध्यात्मिक पक्ष प्रबल होकर सामने आता है। इसके तत्व दर्शन को ब्रह्म, माया, जीव, जगत, पुरूष और प्रकृति आदि बिन्दुओं के आधार पर व्याख्यायित किया जा सकता है।

5. समरसता या सामरस्य– समरसता में जब आत्मा परमात्मभाव को प्राप्त होकर पूर्णतः शिव रूप हो जाती है तब उसे समरसता कहते है। उससमय योगी यह समझने लगता है कि न मैं हूँ, न कोई और, न ध्यय ही यहा विद्यमान है, उसका मन आनन्द में लोन हाकर समरसता को प्राप्त कर जाता है। नित्य समरसता का अधिकार उमड़ता कारण जलधि समान।

कामायनी में समरसता तीन रूपों में पायी गई हैः–

1. **समाज की समरसता–**

जिसके कारण सारस्वत प्रदेश ध्वंस हुआ
''वह विज्ञानमयी अभिलाषा, पंख लगाकर उड़ने की
जीवन की असीम आशाएँ, कभी न नीचे मुड़ने की''।

2. **व्यक्ति की समरसता–**

''हृदय की अनुकृति बाह्य उदार एक लम्बी काया उन्मुक्त
मधु पवन क्रीड़ति ज्यों शिशु साल सुसोभित हो सौरभ संयुक्त।
X X X X X X X X X
नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पगतल में
पीयूष श्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में''।

3. प्रकृति पुरूष की समरसता –

''तुम भूल गये पुरूषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की
सरमसता का है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की

समरसहो जड़ या चेतन X X X आनन्द अखण्ड धना था''।

समरसता का तत्व उनके जीवन में पूर्णतः घुल चुका था, उनके सुपुत्र श्री रत्नशंकर प्रसाद यह मानते हुए कहते है कि कामायनी विश्व जननी का मानव पुत्र के प्रति आदेश इसी सत्य को उद्घाटित करता है''सबकी समरसता का प्रचार मेरे सुत सुन माँ की पुकार''। स्वयं प्रसाद जी अपने कर्त्तव्यों के प्रति साहित्यिक हो अथवा व्यवसायिक वे समानरूप से सचेष्ट थे। आधी कामायनी की रचना और कितनी ही स्फुट रचनाएँ उन्होंने सुंधनी साहू के कारखाने में सुरती बनाने का काम करते हुए पूर्ण की थी। जहाँ पर शिव और शक्ति का सामरस्य होता है, वहा आनन्द प्राप्ति होती है, शैवागमों में इसे सतचिदानंद प्राप्ति कहते हैं। कामायनी में समरसता व्यक्ति, समाज और प्रकृति तथा पुरूष के सामरस्य के आधार पर दिखाइ पड़ती है। व्यक्ति सामरस्य में प्रमाता–प्रमेय–अर्न्तमुखी एवं बर्हिमुखी प्रवृत्तियॉ एवं इच्छा ज्ञान क्रिया का सामरस्य समाज सामरस्य में नर–नारी का, अधिकार–अधिकारी, शासक–शासित का और व्यक्ति–समाज का सामरस्य और प्रकृति तथा पुरूष समरसता में जड़ चेतन का, ब्रह्म और जगत का सामरस्य प्रमुख है। उदाहरण स्वरूप–अशांति, एवं चंचलता के समय मनु की दुर्गति होती रहती है और वे साहसिकता की खोज में भटकते फिरते हैं। कई बार प्रमाता कर्ता के रूप में अहंकार भी होता है तो कभी प्रमेय कर्म को हो सब कुछ मानकर अभिलाषित होते हैं।

बाह्य वस्तुओं की माया–मरीचिका मनु को भटकाती रहती है जिसे ''प्राप्त करने के लिए खोजता फिरता मैं इस हिमगिरि के अंचल में''। और फिर ''किन्तु सकल कृतियों की अपनी सीमा है हम ही तो'' मनु का प्रारम्भिक जीवन बर्हिमुखी था, परिणाम स्वरूप जीवन अन्धगति से परिचालित था। बाद में प्रतिक्रिया स्वरूप निर्वेद सर्ग के बाद अन्तर्मुखी होकर

दिव्य ज्ञान प्राप्त करते हैं। श्रद्धा के सहयोग से इच्छा, ज्ञान, क्रिया के द्वारा स्थायित्व की प्राप्ति करते हैं।

समाज के सामरस्य में व्यक्ति का नर नारी रूप में सामरस्य जिसमें कामवृति जीवन की मनोवृति मानी गयी है। नर की एकान्तिक होने पर ''तुम भूल गये पुरूषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की'' की भाँति चेतावनी आवश्यक हो जाती है। सारस्वत प्रदेश में व्यक्ति एवं समाज तथा शासन और शासित के साहचर्य के बिना ही तो विप्लव की स्थिति उत्पन्न हुई। समरसता सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की, समरस ये जड़ या चेतन ओर समरस, अखण्ड आनन्द वेश में समाज के साथ प्रकृति का सामरस्य भी परिलक्षित होता है।

6. परमाद्वयता– अखण्ड आनन्द की भावना इसी में विद्यमान ह। जहाँ द्वैत हो वहाँ आनन्द कैसा ? द्वैत की भावना मिटाकर ही आनन्द की प्राप्ति सम्भव है ''नीचे जल था ऊपर हिम था एक तरल था एक सघन, एक तत्व की ही प्रधानता कहो उसे जड़ या चेतन''। और ''मैं'' ''त्'' का ज्ञान अज्ञान है ''हम अन्य व और कुटुम्बी, हम केवल एक हमी है, तुम सब मेरे अवयव हो, जिसमें कुछ नहीं कमी है।''

7. स्वरूप का अभिज्ञान– अखण्ड आनन्द भाव के लिए अहं का ज्ञान आव"यक है और जीवनानुभव के बाद आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है–''सब भेद भाव भुलाकर दुःख–सुख को दृ"य बनाता, मानव कह रे। यह मैं हूँ, यह वि"व नीड़ बन जाता''। '' अपने स्वयं को वि"व भर में एकात्म रूप में देखना एवं अपने स्वरूप का अभिज्ञान ही जीवन की परम् साधना है–'प्रतिफलित हुई सब आँखे, उस प्रेम ज्योति विमला से, सब पहचाने से लगते, अपनी ही एक कला से।'

8. सौन्दर्य साधना – सच्ची सौन्दर्य साधना' तपन में शीतल मंद बयार की भाँति होनी चाहिए उस साधना से परम् ि"वत्व के द"र्न होते हैं– '' बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल .... समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था, चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड बना था। '' और '' मांसल सी आज हुई थी हिमवती प्रकृति पाषाणी, इस लास रास में विह्वल थी हँसती सी कल्याणी।

9. महाचेतना – कामायनी का प्रतिपाद्य मानव को जीव की सीमित व्यक्तिगत तथा आत्मचेतना से ऊपर उठाकर व्यापक सार्वजनिक तथा विश्व चेतना की और अग्रसर कर समरसता की स्थिति में पतिस्थापित करने से महाचेतना को परम आनन्द प्रसाद की प्राप्ति होती है '' मैं की कोरी चेतनता सबको ही स्पर्श किए सी, सब भिन्न–भिन्न परिस्थितियों की है मादक घूँट पीये सी'' ..... कर रही लीला मय आनन्द ..... चेतनता का भौतिक विभागकर जग को बाट दिया विराग '' वैज्ञानिक विकास एवं आध्यात्मिक विकास की स्थिति में समानता लाने के लिए भी महाचेतना शक्ति रूप में सक्रिय हो उठती है।

10. श्रद्धाभावना – श्रद्धा द्वारा ही मानव जगत में सामरस्य की स्थिति बनाई जा सकती है। श्रद्धा–भावना की प्रतीक है, आनन्द वाद के ताने बाने में उसका महत्वपूर्ण स्थान है ''दया,, माया–ममता लो आज, मधुरिमा लो अगाध विश्वास। हमारा हृदय रत्ननिधि स्वच्छ तुम्हारे लिए खुला है पास।'' के माध्यम से श्रद्धा भाव प्रकट होता है।

11. व्यापक आनन्द भावना – सर्व कर्म, सर्व ज्ञान–विज्ञान का अभीष्ट– आनन्द प्राप्ति ही है। यह सृष्टि, लीला परम् ऐश्वय उस परम अखण्ड आनन्द की मात्र अभिव्यक्ति ही है। '' तप ही नहीं केवल जीव सत्य '' '' नित्य नूतनता का आनन्द किए है परिवर्तन में टेक। '' परिवर्तन, चंचलता गति भौतिक अथवा शरीर जन्य आनन्द की परिचायक है। आत्मिक ज्ञान ही मानव का साध्य होना चाहिए। आत्मरत और आत्मकेन्द्रित आनन्द क्षणिक और दुःख में पर्यवसित होने वाला होता है। यदि जीवात्मा उचित कर्मों में सदा लीन रहेगी तो वह विजयी और शक्तिशाली होती हुई मंगलमय वृद्धि एवं सुख समृद्धि को प्राप्त कर सकती है। यह भी आनन्द की ही एक स्थिति है। आनन्द भूमि पर पहुंचने पर ज्ञान, क्रिया इच्छा का ही समन्वय हो जाता है। आनन्द प्राप्ति करने के लिए हृदय एवं बुद्धि का समन्वय आवश्यक है। '' समरस थे जड़ या चैतन सुन्दर साकार घना था ..।

12. नियतिवाद –प्रसाद जी ने नियति को भाषा योग वशिष्ठ की भाँति नियामिका शांति रूप में ग्रहण किया है '' नियति मचाती कर्म चक्र यह तृष्णा जनित ममत्व वासना, पाणिपादमय पंचभूत की यहाँ हो रही है उपासना।'' इस नियति के कारण ही देव सृष्टि का ध्वंस और मनु के द्वारा सृष्टि निर्माण एवं विकास हुआ अतः यह उद्भव स्थिति एवं संहार कारिणी है। प्रलयोपरान्त मनु ने नियति के एकान्त शासन को मनु की विवशता के रूप में स्वीकार किया। '' उस एकान्त नियति शासन में चले विवश धीरे–धीरे ''।

नियति के कारण ही मनु विलासी, अभिमानी और उच्छृंल बनते ह, काम तृप्ति हेतु श्रद्धा एवं इड़ा के पास जाते हैं। अपने आप को चिर स्वतन्त्र समझने लगते हैं। नियति का कार्य समाज और व्यक्ति के मध्य सामंजस्य पैदा करना है, नियति आत्मा पर नियंत्रण करने वाली है। जब यह जीव शिव तत्व की ओर उन्मुख होने लगता है तो नियति के शासन के कठोर बन्धनों से स्वतः ही दूर होता जाता है – '' निराधार है किन्तु ठहरना हम दोनों को आज यहीं हैं, नियति खेल देखूं न सुनो अब इसका अन्य उपाय नहीं है।''

13. स्वातन्त्रयवाद – प्रत्यभिज्ञ दर्शन में चित् को स्वतन्त्र माना गया है वह स्वच्छा से विश्व का निर्माण, स्थेर्य, सहार, तिरोधान, अनुग्रह आदि कार्य करती है–'' कर रही लीलामय आनन्द महाचिति सजग हुई सी व्यक्त, विश्व का उन्मीलन अभिराम, इसी में सब हाते अनुरक्त ''।

अन्य दर्शनों का प्रभाव –

1. **बौद्ध दर्शन का दुःखवाद**– बौद्ध दर्शन में दुःखवाद का प्रचार किया गया है, वहाँ संसार को दुःखमय माना गया है यही विचारधारा कामायनी में भी यत्र तत्र बिखरी पड़ी है – '' विषमता की पीड़ा से व्यक्त, हो रहा स्पंदित–विश्व महान, यही दुःख सुख विकास का सत्य यही भूमा का मधुमय दान। ''

2. **क्षणिकवाद** –यह भी बौद्ध धर्म का एक अंग है। इसमें संसार के साथ–साथ आत्मा को क्षणिक एवं परिवर्तनशील माना गया है। चिंता सर्ग में मनु के समक्ष भीषणतम् समस्याएँ प्रकट होती है। तो उसे सब कुछ क्षणिक प्रतीत होता है –''मृत्यु अरी चिर निद्रे तेरा अंक हिमानी–सा शीतल, तू अनन्त में लहर बनाती काल जलधि की सी हल चल।'' .....

जीवन तेरा क्षूद अंश है,, व्यक्त नील धन माला में। सौदामिनि संधि सा सुन्दर क्षणभर रहा उजाला में। ''

3. **करूणा** – यह बौद्ध धर्म के व्यापक तत्वों में से एक है। महायान सम्प्रदाय के अनुसार जिसमें प्रज्ञा के साथ महाकरूणा का भाव रहता है। वह बुद्ध बन जाता है। इस तत्व की प्राप्ति होते ही स्वयं की परिधि का इतना विस्तार हो जाता है कि सभी उसके अपने लगने लगते है। ''दया माया ममता लो आज, मधुरिमा लो अगाध विश्वास, हमारा हृदय रत्ननिधि स्वच्छ, तुम्हारे लिए खुला है पास, बनो संसृति के मूल रहस्य तुम्ही से फेलेगी यह बेल''। आदि।

4. **परमाणुवाद** –कामायनी में न्याय वैशेषिक के परमाणुवाद की ओर भी संकत हुआ है। वह कहते है कि मूल शक्ति अपने आलस्य का परित्याग करके सृष्टि का सृजन करने को जैसे ही उद्धत हुई वैसे ही अणु परमाणु सब दौड़ पड़े और
विद्युत कण पारस्परिक आकर्षण के कारण लीन हो गए।
''वह मूल शक्ति उठ खड़ी हुई अपने आलस का त्याग किए, परमाणु बाल
सब दौड़ पड़े, जिसका सुन्दर अनुराग लिए। एवं .....
वह आकर्षण वह मिलनहुआ, प्रारम्भ माधुरी छाया में,
जिसको कहते सब सृष्टि बनी, मतवाली अपनी माया में।''

5. **भौतिकतावाद** – इस दर्शन का मूल आधार संसार में जो कुछ दिखाई देता है। वह सब भौतिक पदार्थ है एवं गति के द्वारा ही उत्पन्न हुआ है। विश्व निर्माण में दृव्य का हाथ है और इसी से समस्त भौतिक पदार्थ मानव शरीर,मन आदि का निर्माण हुआ है। संसार में जो कुछ दृश्यमान है भौतिकतावाद का ही परिणाम है। यह सिद्धान्त कालमार्क्स एवं हीगेल के आधार पर प्रसाद जी ने प्रभावित होकर प्रयुक्त किया है। भारतीय दर्शन के आधार पर यह सिद्धान्त चार्वाक के सिद्धान्त पर आधारित है या उसके निकट है। जल प्लावन की ऐतिहासिक घटना इसी आधार पर घटी है। यथा–

''बिछुड़े तेरे सब आलिंगन, पुलक स्पर्श का पता नहीं
मधुमय चुबंन कातरताएँ, आज न मुख को सता रही।''

भौतिकतावाद के आधार पर सारस्वत प्रदेश की स्थापना, वर्ग संघर्ष, क्रान्ति एवं श्रम विभाजन एवं नगरीय उन्नति दृष्टव्य है। प्रसाद जी भौतिकतावाद पर आध्यात्मिक वाद की विजय दर्शाना चाहते थे लेकिन पत्यभिज्ञ दर्शन से प्रभावित प्रसाद समरसता की ओर चलते हुए आनन्दवाद की ओर चले गये।

6. **प्रकाश का सिद्धान्त** – प्रकाश के सिद्धान्त के आधार पर कामायनी में स्पष्ट किया है कि प्रकाश तरंग युक्त एवं कम्पनशील होता है –

''व्यक्त नील में चल प्रका"ा का
कम्पन सुख बन जाता था।''

7. **वायुमण्डल का सिद्धान्त** – ज्यों–ज्यों वायुमण्डल में मनुष्य ऊपर उठता जाता है त्यों–त्यों ''ऑक्सीजन'' का प्रभाव कम होता जाता है। ऊपर ठंडक होती है तथा जीवन के चिन्ह नहीं मिलते है–

''नीचे जल धर दौड़ रहे थे
सुन्दर सुरधनु माला पहने
कुंजर सदृश्य इठलाते
चमकाते चपला के गहने।''

अधिकऊपर शीत पवन ही शेष रहता है साँस अवरूद्ध होने लगती है। ''लौट चलो इस वात चक्र से, मैं दुर्बल अब लड़ न सकूँगा। श्वास रूद्ध करने वाले इस शीत पवन सअब लड़ न सकूँगा। ''

8. **पैत्रिक योग्यता का सिद्धान्त** – बच्चों में माता–पिता के गुण पाए जाते है। कामायनी के मानव में श्रद्धा, एवं मनु दोनों के ही गुण विद्यमान हैं–

यह तर्कमयी तू श्रद्धामय, तू मननशील कर कर्म अभय ''।

9. **अद्धैत दर्शन** – अद्धैत दर्शन कामायनी में प्रारम्भ से प्रतिस्थापित हुआ है आत्मा में ही ईश्वर की सत्ता है, ईश्वर सर्व व्यापक है –

'' नीचे जल था उपर हिम था एक तरल था एक सघन
एक तत्व ही की प्रधानता कहो उसे जड़ या चेतन। ''

10. **सांख्य दर्शन** – सांख्य दर्शन के आधार पर मनु में सत, रज, तम तीनों ही गुण विद्यमान पाए जाते हैं।

इस भांति कामायनी में शैव दर्शन, प्रत्यभिज्ञ दर्शन, दर्शन, न्यायवेशेषिक, वैज्ञानिक आदि विभिन्न दर्शनों एवं सिद्धान्तों का समावेश हुआ है। किन्तु प्राथमिकता प्रत्यभिज्ञ दर्शन को ही मिलती है जिसके अनुसार आनन्दवाद की स्थापना करना प्रसाद जी का प्रमुख लक्ष्य रहा है।

संदर्भ सूत्र :– ''कामायनी'' – जय"ांकर प्रसाद भूमिका एवं मूल पाठ से एवं
1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 313
2. शांतिप्रिय द्विवेदी – संचारिणी प. 221–22
3. रामदरश मिश्र – छायावाद का पुनर्मुल्यांकन पृ. 17
4. डॉ नगेन्द्र – आस्था के चरण पृ. 233
5. डॉ नगेन्द्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 212